© 2017 IJSRSET | Volume 3 | Issue 5 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा

शैलेन्द्र कुमार यादव
(शोधछात्र)
प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

किसी भी समाज एवं राष्ट्र की स्थिति को वहाँ की नारियों की दशा को देखकर आँका जा सकता है। पुरातन काल के गौरवमयी सतयुगी समाज का श्रेय नारियों की उच्च स्थिति को दिया जा सकता है। वैदिक ग्रन्थों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि तब समाज में स्वतंत्रता एवं समानता की भावना ओतप्रोत थी, नारियों को हर स्तर पर सम्मान एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था। उन्हें पुरुषों के समान अवसर उपलब्ध थे एवं वे भी हर क्षेत्र में बढ़–चढ़कर हिस्सा लेती थी। गृहकार्यों से लेकर कृषि प्रशासन एवं यज्ञ कर्म से लेकर अध्यात्म साधना तक वे कोई भी क्षेत्र उनके विशिष्ट व्यक्तित्व, प्रतिभा एवं कौशल की छाप से अछूते नहीं थे। अपनी बहुआयामी उपलब्धियों के आधार पर वे अपनी जाति के अन्दर संजीवनी शक्ति का संचार करती थी और अपने समाज व राष्ट्र को सशक्त एवं ऊँचा उठाने में अपना अमूल्य योगदान देती थी। वैदिक वाङ्मय में कहीं पुत्री तो कहीं भगिनी, कहीं पत्नी व कहीं माता के रूप में उसकी भूमिका एवं योगदान का उल्लेख आता है। और कहीं–कहीं वह मंत्रद्रष्ट ऋषिका के रूप में अपना वर्चस्व प्रकट करती है।

वैदिक समाज में पुत्र के समान ही पुत्री को स्नेह–दुलार एवं आदर–सम्मान दिया जाता था। (श. 3/31/2) परिवार में कन्याएँ अपने आदर्श गुणों को विकसित करती हुई प्रायः माता के अनुशासन में रहती थी। माता के साथ वे गृहकार्यों को सीखती थी व उनको सहायता देती थी।(ऋ. 3/55/12) वैदिक कन्याएँ कृषि कार्य में भी पिता के साथ सहयोग करती थी। अपाला को अपने पिता के खेतों में अच्छी फसल के लिए इन्द्र से याचना करते हुए चित्रित किया गया है। (ऋ. 8/81/5–13) ऋग्वेद में कन्या को उच्च स्थान प्राप्त था, जिसका उदाहरण 'विसूनृता ददृशेदीयते घृतम्' (ऋ. 1/135/7) अर्थात् जहाँ घृत बहता है, वहाँ हर्ष से प्रफुल्लित कुमारी देखी जाती है। इस तरह कन्याओं का सम्मान होने से वे सन्तुष्ट होकर अनेक समाजिक कार्यों में सहयोग प्रदान करती थी।[1]

वैदिक काल में कन्याओं को शुभ तथा विशेष शक्ति से युक्त माना जाता था। इसकी पुष्टि उजस् को दिव की पुत्री निर्देशित करने से होती है। घर की कन्याएँ सोम सवन में प्रमुख रूप से भाग लेती थी। (ऋ. 9/1/6) ऋग्वेद में सोमसवन के प्रसंग में सवनकर्त्ता की अंगुलियों को 'याषणः', 'स्वसार' तथा 'दुहितरः' आदि शब्दों में निर्दिष्ट किया गया है (ऋ. 9/91, 14/5, 32/2)। जिससे यह प्रतीत होता है कि सोमसवन का कार्य कन्याओं द्वारा ही सम्पन्न होता था। सूर्य की दुहिता (श्रद्धा) को अनश्वर छलनी से बहते हुए सोम को

छानने वाली कहा गया है। ऋग्वेद में पुत्र एवं पुत्री के दीर्घायु कामना का भी उल्लेख आता है। (ऋ. 4/31/8)। ऋग्वेद में प्रभूत संख्या में वाणों को धारण करने वाले त्रषुधि की प्रशंसा 'अनेक पुत्रियों के पिता' कहकर की गई है। (ऋ. 6/75/5)। अन्यत्र पुत्र को पिता के सत्कार्यों का कर्त्ता और पुत्री को आदर करने योग्य कहा गया है।[2]

इस युग में धार्मिक कार्यों में भी बालिकाओं को बालकों के समान अवसर प्राप्त थे। कन्याओं के बालकों की ही भाँति उपनयन संस्कार आदि होते थे और वे संध्यावंदन का विधान नियमित रूप से करती थी। कौषीतकि ब्राह्मण में एक कुमारी गंधर्व गृहीत अग्निहोत्र में पारंगत बतायी गयी है। (कौ.ब्रा.2/9) बालिकाओं के लिए बालकों की ही भाँति शिक्षा ग्रहण करना आवश्यक थी[3] (अथर्व. 11/5/14)। बालिकाएँ ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई विविध विद्याओं में पारंगत होती थी। आध्यात्मिक ज्ञान के क्षेत्र में बृहस्पति भगिनी, भुवना, अपर्णा, एकपर्णा, एकपाटला, मैना, धारिणी, संमति आदि कन्याओं का उल्लेख आता है। ये सभी ब्रह्मवादिनी थी। ऐसी कन्याओं का भी उल्लेख आता है जिन्होंने तपस्या के बल पर अभीष्ट वर की प्राप्ति की, यथा उमा, धर्मव्रता आदि। यही नहीं गृह में निवास करती हुई कन्याएँ भी गृहस्थिक शिक्षा से अवगत हुआ करती थी।

शिक्षा के साथ ही वे नाना प्रकार के गायन, वादन एवं नृत्य जैसी ललित कलाओं में भी प्रवीण होती थीं। तैत्तिरीय संहिता एवं मैत्रायणी संहिता में कन्याओं की संगीत नृत्य में अभिरुचि का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण (14/3/1/35) में वर्णन आता है कि स्त्रियाँ सामगान करती थीं तथा उनमें मंत्रों के शुद्धाचारण एवं स्वरों के उचित आरोह व अवरोह की सामर्थ्य होती थी। वे घरेलू शिक्षा के प्रति भी सचेत थी। पितृगृह में कन्याओं को पाक शास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। (तै. स. 5/7) तथा वे अपने व्यक्तित्व को हर दृष्टि से विकसित करती थी।

इस प्रकार सभी कन्याओं को वैदिक काल में उच्च स्थान प्राप्त था। बालकों की तरह शिक्षा ग्रहण करती हुई वे नाना प्रकार की विद्याओं से विभूषित होती थी। पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत लेकर शिक्षा ग्रहण करती हुई युवा होने पर कन्या विवाह करती थी– 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्' (अथर्व 11/5/19)। पत्नी के रूप में भी स्त्री को उच्च स्थान प्राप्त था। विवाह संस्कार के समय कुलवधु को सम्बोधित करते हुए कहा जाता था। 'सम्राज्योधि श्वशुरेषु सम्राज्युत देवृषुः, ननान्दुः सम्राज्येधि सम्रज्युत श्वश्रुवाः'(अथर्व. 14/14)। अर्थात्– 'हे नववधु! तू जिस नवीन घर में जाने लगी है। वहाँ की सम्राज्ञी है। वह राज तेरा है। तेरे श्वसुर, देवर, ननद और सास तुझे सम्राज्ञी समझते हुए तेरे राज में आनंदित रहें।' वेद में स्त्री को घर की रानी कहा गया है। इसी से उस समय में परिवार के अंदर नारी की ऊँची स्थिति का अनुमान किया जा सकता है।[4]

इस तरह वैदिक काल में किसी भी रूप में स्त्री पुरुष से कम नहीं थी। वे पुरुषों के समतुल्य समझी जाती थीं। यह भाव 'अर्धांगिनी' में भली–भाँति व्यक्त हो जाता है। 'दंपत्ति' शब्द में स्त्री–पुरुष दोनों के समान रूप से घर का स्वामी होने का भाव निहित है। पत्नी को अन्य कई शब्दों में सम्बोधित किया जाता था। जैसे– जाया, दारा, वासिता आदि, जो कि उसकी उच्चस्थिति को व्यक्त करते हैं। पति स्वयं (शुक्र रूप में) भार्या के गर्भ में प्रवेश करके पुत्र के रूप में जन्म लेता है। इस कारण उसे जाया की संज्ञा दी गयी। 'स्त्री पुरुष का आधा भाग, जब तक जाया प्राप्त नहीं होती, तब तक जीवन अपूर्ण रहता है। जब जाया प्राप्त होती है, तब स्वतः पति ही उसके सहारे उत्पन्न होता है'(वै.ब्रा. 3, 31, 3, 5)।

महाभारत के आदिपर्व 74/31 एवं वन पर्व 12/70 के अनुसार पत्नी सदा आदर की पात्र है, इसलिए उसे 'दारा' कहा गया। शतपथ ब्राह्मण (5/2/1/10) के अनुसार– जो पत्नी है वह आत्मा का आधा भाग है। इसलिए जब तक कोई व्यक्ति पत्नी को प्राप्त नहीं करता तब तक संतान प्राप्त नहीं होती। अतएव वह अधूरा रहता है। जब वह पत्नी प्राप्त करता है, तब उसे संतान होती है व वह पूर्ण हो जाता है।

तै. संहिता (6/1/4/5)– में कहा गया है कि पति–पत्नी दाने की दो दालों की भाँति हैं, जिसकी संयुक्त स्थिति ही दोनों को पूर्णतः प्रदान करती है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी मानस में इस कथन का समर्थन किया है। मनु ने भी दोनों में प्रेम की मर्यादा को स्वीकारा है (मनु. 9/101)। सभी शास्त्रकारों ने गृहिणी रहित गृह को अरण्य सदृश कहा गया है। महाभारत शाँतिपर्व 144/61 के अनुसार भार्या सदृश न तो कोई बन्धु है और न ही धर्म संग्रह में अन्य कोई सहायक। 'गृहिणी गृहमुच्यते' द्वारा वैदिक युग में नारियों का गृहस्थी में अत्यन्त महत्त्व बताया गया है।[5] नारी वस्तुतः परिवार की केन्द्र बिन्दु मानी जाती थी। परिवार का मंगल, सौभाग्य एवं कल्याण सब कुछ उस पर आधारित था।

मातृरूप में भी वैदिक नारी को पूज्यनीय स्थान प्राप्त था। 'बन्धु में माता पृथिवी महीयम् (ऋ. 1/164/33) तथा माता भूमि पुत्रोऽह पृथिव्या (अथर्व. 12/1/12) के द्वारा माता रूप में उसकी पग–पग पर स्तुति की गई है, तप, त्याग एवं प्रेम की त्रिवेणी तथा अमृत की खान माता को पिता एवं गुरु से भी ऊँचा स्थान दिया गया है। 'गुरुणं चैव सर्वेषाँ माता परमेको गुरुः।' पुत्रवती स्त्रियों को समाज में विशेष आदर प्राप्त था। (ऋ. 7/8/1/4) विवाह के समय बहू को यही आशीर्वाद दिया जाता था कि सन्तानवती होकर सौ वर्ष तक कुल पर शासन करो। मनुस्मृति (21.45) में गौरव की दृष्टि से माता को पिता से 1000 गुना अधिक माना गया है।

वैदिक जीवन पद्धति में धार्मिक क्षेत्र में नारी को उच्च स्थान प्राप्त था। वैदिक काल में धार्मिक क्रियाओं में यज्ञ को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता था। और पत्नी के अभाव में पति को यज्ञाधिकारी नहीं माना जाता था। ऋग्वेद व अथर्ववेद में नारी के अधिकार एवं कर्त्तव्यों की व्याख्या करते हुए कहा गया है। कि पत्नी के साथ बैठकर पति यज्ञार्थ स्रुवा लेकर यज्ञ करे (ऋ. 1/83/3)।[6] अन्य मंत्रों में भी बताया गया है कि स्त्री

प्रतिदिन घी और सामग्री लेकर प्रातः साँय यज्ञ करे। (ऋ. 7/116) शतपथ ब्राह्मण में अकेले पति को स्वर्गलोक की भी आकाँक्षा न करने को कहा गया है। वाजपेय यज्ञ में यज्ञीय यूप के सहारे सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ पति पत्नी से कहता है कि 'आओ, आओ हम दोनों साथ–साथ स्वर्गारोहण करें' (श.ब्रा. 5/2/1/10)।

तैत्तिरीय ब्राह्मण (3/7/5) में पति–पत्नी का संयोग सत्कार्य पूर्ति का कारक बताया गया है, जिसके कारण वे यज्ञ की धुरी में युक्त होते हैं। पत्नी शब्द की याषिणी व्युत्पत्ति के अनुसार स्त्री को पत्नी तभी कहा जाता है, जब वह पति के साथ यज्ञ में संयुक्त होती है (अष्टाध्यायी 4/1/33)। ब्रह्माण्ड पुराण में वर्णित है कि ब्रह्म, विष्णु और महेश सपत्नीक देवी की उपासना करते हैं (4/40/93)। वायु पुराण के अनुसार श्राद्ध के अवसर पर अग्नि का आवाहन सपत्नीक करना चाहिए (15/70)। यज्ञ मण्डप में सपत्नीक प्रवेश करना मंगलदायी माना गया है (मत्स्य पुराण 58/21)। मनु स्मृति (5/155) के अनुसार स्त्री का यज्ञ पति के साथ सफल होता है। शतपथ ब्रा. (15/3/1/33) से स्पष्ट होता है कि उद्गाता का कार्य भी पत्नियाँ ही करती थीं।[7]

यज्ञ सम्पादित करने वाली नारियों में विश्ववारा का नाम सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। वह प्रातःकाल स्वयं यज्ञ प्रारम्भ कर देती थी। (ऋ. 5/281)। कन्या द्वारा घर में यज्ञ का वर्णन वेद से प्राप्त होता है (ऋ. 8/91/1)। गृहस्थ में अर्धांगिनी के रूप में दैनिक धार्मिक कार्यों में भी नारी को प्रमुख माना जाता था। उसे दया की देवी स्वीकार किया गया है। इसीलिए उपनयन संस्कार के समय बालक घर की स्त्रियों से ही भिक्षा माँगता था (मनु. 2/50)। राम के युवराज पद अभिषेक के समय कौशल्या ने यज्ञ संपादित किया था (रामायण 2/20/15)। बाली के सुग्रीव से युद्ध के लिए जाते समय उसकी पत्नी तारा भी यज्ञ कर रही थी। (रामायण 4/16/18)। पाण्डव जननी माता कुन्ती भी अथर्ववेद की पंडिता थी (महाभारत 3/3/5/20)।[8]

उन दिनों अनेक महिलाएँ अध्यापिकाओं के रूप में शिक्षण देती थीं। इन्हें उपाध्याया कहा जाता था (पतंजलि– 3/822)। पाणिनी (6/2/47) ने भी 'उपाध्याया' एवं 'आचार्या' पद वाली स्त्रियों पर प्रकाश डाला है। पाणिनी ने महिला–शिक्षणशाला का भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार छात्र–छात्राएँ एक साथ शिक्षा ग्रहण करते थे।

बाल्मीकि आश्रम में आत्रेयी लव और कुश के साथ विद्यार्जन करती थी। भरिवासु और देवराट् के साथ कामन्दकी ने गुरुकुल में अध्ययन करने का विवरण प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

वृहदारण्यक उपनिषद् से ज्ञात होता है कि उस समय नारियाँ दार्शनिक सभाओं में भाग लेती थीं। यथावसर वे सभाओं में भाषण आदि भी दिया करती थीं।[9] (अथर्व. 14/1/20) इस युग में दो प्रकार की नारियों का उल्लेख आता है, 1. सद्योद्वाहा, 2. ब्रह्मवादिनी। सद्योद्वाहा– वे जो ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करती थीं और आश्रम के महत्त्वपूर्ण नियमों का पालन करती हुई मातृत्त्व के गरिमामय पद को सुशोभित करती थीं।

ब्रह्मवादिनी नारियाँ, आध्यात्मिक चिंतन एवं तपस्या प्रधान जीवन जीती थीं। उपनिषद् काल की मैत्रेयी एवं गार्गी इन स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। मैत्रेयी युग के महानतम तत्त्ववेत्ता याज्ञवल्क्य ऋषि की धर्मपत्नी थी। वृहदारण्यक उपनिषद् (2/4) में याज्ञवल्क्य एवं मैत्रेयी का संवाद आता है, जिससे मैत्रेयी के मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास की उच्चावस्था का ज्ञान होता है। गार्गी के भरी सभा में याज्ञवल्क्य ऋषि को शास्त्रार्थ करने का वर्णन भी उपनिषदों में मिलता है।[10]

यजु. 14/4 में स्त्री को 'सोमपृष्ट' कहा गया है। जिसका अर्थ है। वेदमन्त्रों में जिज्ञासा रखने वाली। प्राचीन इतिहास में सुलभा का नाम प्रसिद्ध है। सुलभा का संकल्प था कि जो कोई उसे शास्त्रार्थ में परास्त कर देगा, उसी से विवाह करेगी। सुलभा का यह निश्चय उसके अगाध पाण्डित्य का द्योतक है। वेदों में ऐसी कई ऋषिकाओं का उल्लेख आता है, जिन्होंने अपनी आध्यात्मिक जिज्ञासा एवं तप–साधनाओं द्वारा मंत्रों का साक्षात्कार किया। वेद के कई मंत्र 'ऋषिकाओं' द्वारा खोजे गए हैं।

ब्रह्मवादिनी घोषा ने ऋग्वेद के दशम मण्डल के 39 वें एवं 40 वें सूक्तों का साक्षात्कार किया था। इंद्रदेव की पत्नी इन्द्राणी ने ऋग्वेद के दशम मण्डल के एक सूक्त की रचना की थी। अपाला और रोमशा के साथ सूर्य पुत्री सूर्या ने भी मंत्रों की रचना की थी। कक्षीवान की पत्नी योधा ने अपनी तपस्या से ऋग्वेद के दशम मण्डल के दो सूक्तों के दर्शन किए थे। ऋग्वेद के 151 सूक्त की ऋषिका पुलोम पुत्री शची कही गई है। अपने पति अगत्स्य के साथ लोपामुद्रा ने 179 वें सूक्त का दर्शन किया था। इनके अतिरिक्त श्रद्धा, कामायनी, शची, यमी, सावित्री, विभावटी, अदिति आदि के नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने मंत्रों का साक्षात्कार किया था।

पुरातन युग की नारी सुगृहिणी होने के साथ पति के सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। मनु ने स्पष्ट रूप से स्त्री को राज्य संचालन के योग्य माना है। वेद में भी स्त्री के लिए कई स्थलों पर पुरंधि शब्द का उल्लेख आता है– 'पुरंनगरं दधातीति पुराँधि' अर्थात्– जो नगर की रक्षा और पोषण करे। नगरों के प्रबंधन, आँतरिक रक्षा एवं सफाई आदि ये कार्य स्त्रियाँ ही करती थीं। स्त्रियाँ सभा एवं समिति की सदस्याएँ भी चुनी जाती थी। अथर्ववेद में कई स्थान पर इसका संकेत मिलता है (अथर्व. 7/38/4, 12/4/46, 12/3/52)। जिससे स्पष्ट होता है कि वैदिक युग में पुरुषों की भाँति राज्य की सभा व समितियों में स्त्रियाँ भाग ले सकती थीं।

आज साँस्कृतिक पुनरुत्थान की बेला में पुनः उसी स्वर्णिम इतिहास दोहराया जाना है। शान्तिकुञ्ज के तत्त्वावधान में चल रहे विश्वव्यापी विचार क्रान्ति अभियान के अंतर्गत महिलाएँ गायत्री साधना एवं यज्ञ कर रही हैं। अश्वमेध जैसे विराट् यज्ञ में वे ब्रह्मवादिनी की भूमिका निभा चुकी है। धीरे–धीरे वे समाज और जीवन के हर क्षेत्र में पदार्पण कर रही हैं। नारी जागृति की यह लहर वर्तमान 21 वीं सदी में नारी सदी के आदर्श को सार्थक साकार करके ही दम लेगी। ऐसा विश्वास किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद 8वॉ मण्डल 81 भाग 5,13 श्लोक
2. ऋग्वेद 6 मण्डल, 75 भाग, 5 वॉ श्लोक
3. अथर्ववेद 11/5/14
4. अथर्ववेद 14/14
5. महाभारत शांतिपर्व 144/61
6. ऋग्वेद 1/83/3
7. शतपथ ब्राहमण (15/3/1/33)
8. महाभारत 3/3/5/20
9. अथर्ववेद 14/1/20
10. वृहदारण्यक उपनिषद (2/4)